वर्तमान परिप्रेक्ष्य में संत साहित्य की प्रासंगिकता

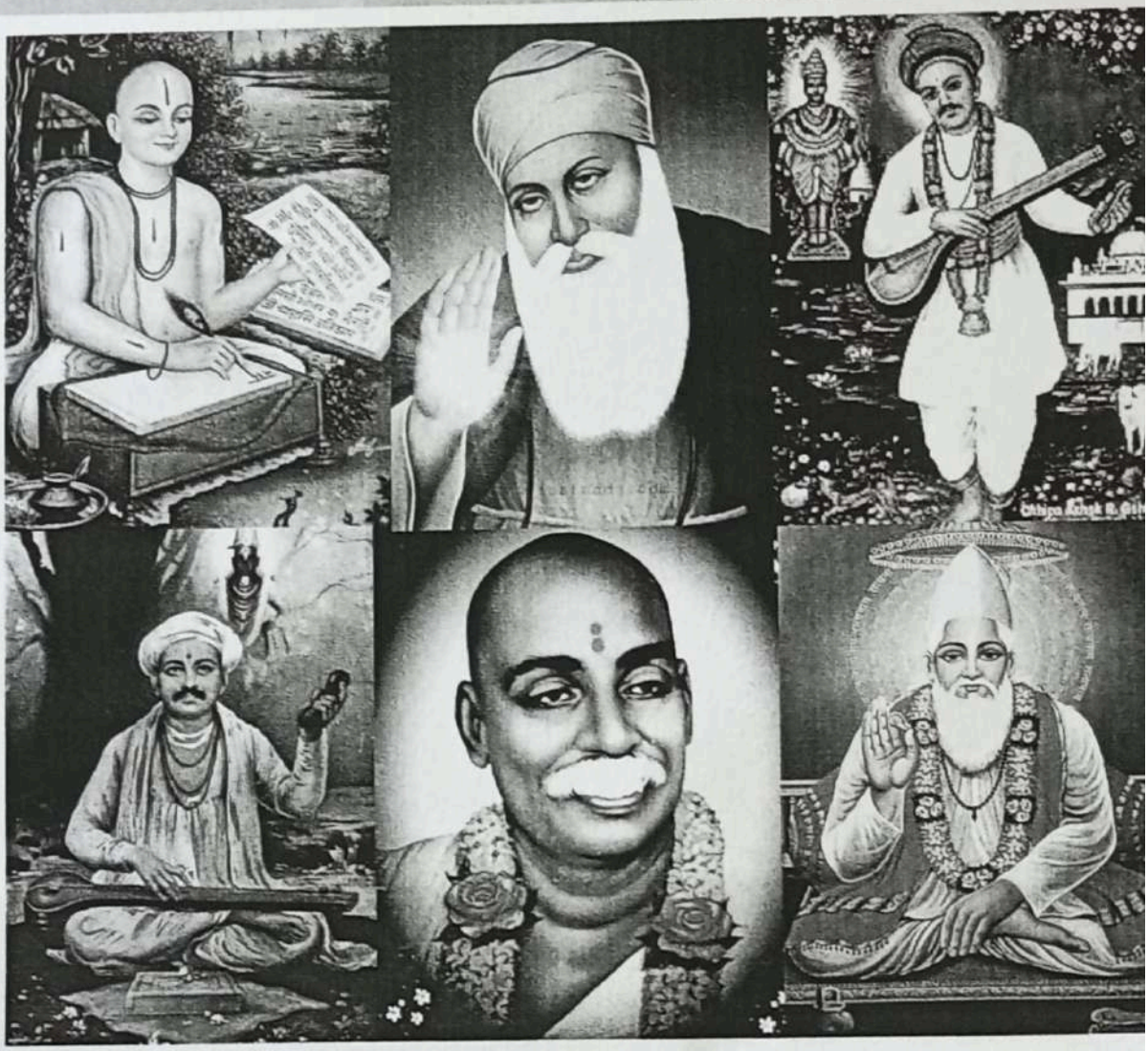

संपादक

डॉ. कमलकिशोर गुप्ता

श्री बालाजी प्रकाशन, नागपुर

भारतीय विचार मंच, नागपुर

ISBN : 978-93-84855-13-0

9 789384 855130

₹ 400/-

श्री बालाजी प्रकाशन, नागपुर

पुस्तक – वर्तमान परिप्रेक्ष्य में संत साहित्य की प्रासंगिकता

संपादक –डॉ. कमलकिशोर एस. गुप्ता

प्रकाशक –
द्वारा सुनील किटकरू
भारतीय विचार मंच, नागपुर

श्री बालाजी प्रकाशन
इतवारी पेवठा, नागपुर
संपर्क नं. 8668374076

ISBN : 978-93-84855-13-0

© संपादक

प्रथम संस्करण – २०२०

मूल्य ४००/- रुपये

शब्द संयोजन :
पवन कम्प्युटर
हनुमान मंदिर, परदेसी तेलीपुरा, सी.ए. रोड, नागपुर

मुद्रक :
आस्था प्रिंटस्
दोसर भवन चौक, नागपुर

आधुनिक भारतीय नवजागरण के अग्रदूत : कबीर

डॉ. नेहा कल्याणी

वर्तमान समय में समाज में उग्र साम्प्रदायिकता की आंधी चल रही है। धर्म के नाम पर घृणा, द्वेष और उन्माद का प्रचार-प्रसार हो रहा है। जाति, भाषा और धर्म के नाम पर तरह-तरह के दुराग्रहों, कट्टरताओं और संकीर्णताओं का बोलबाला हैं। ऐसी विकट परिस्थितियों में भारतीय साहित्य की प्रासंगिकता पर प्रश्न उपस्थित होता है। हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल का संत साहित्य ऐसी संपत्ति है जो निश्चय ही आज के इस समय में प्रासंगिक है।

कबीर जिस समय भारतीय समाज में पैदा हुए थे, वह बहुत उथल-पुथल का समय था। उस समय संस्कृति, धर्म और विचार की विविध धारायें आपस में टकरा रही थी। एक ओर हिन्दू समाज की भेदभाव पर आधारित जाति व्यवस्था की संरचना थी, दूसरी ओर उग्रता पर आधारित इस्लाम था। कबीर का सत्य समय और समाज के मानव जीवन के अनुभव से मिला था, इसलिए उसे वे अनभैसांचा कहते है।आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार अनभैसाचां का अर्थ ही निर्भय सत्य होता है। इस सत्य को अनुभव कर समाज में प्रसारित करने के लिए कबीर ने समाज की व्यवस्था और मनुष्य के अस्तित्व के साथ ही विद्रोह किया।

कबीर मूर्ति पूजा का विरोध करते हुए निराकार ब्रह्म की बात करते है। कबीर स्पष्ट कहते है कि मेरे राम ने दशरथ के घर अवतार नहीं लिया, वह तो अनुभव से सम्प्रेषणीय है। कबीर के राम तो अगम है, सृष्टि के कण कण में विराजमान है। राम अर्थात रमा हुआ, सृष्टि के कण-कण में व्याप्त। वे कहते हैं कि-

"व्यापक ब्रह्मम सबनिमैं एकै, को पंडित को जोगी ।
रावण-रावक वन सूंक वन वेदको रोगी।"

साहित्यिक संसार में तीन प्रकार के कवि माने जाते है - एक जिन्होंने अपना पूरा संसार स्वयं रचा है उदाहरणत:- वाल्मीकि और व्यास। दूसरे प्रकार के कवि है जिन्होंने स्रष्टा कवियों के काव्य संसार से अपनी रचना की मूल सामग्री लेकर उसे नयी कला के साथ नये रूप में रचा हैं ऐसे कवि है कालिदास, सूरदास और तुलसीदास । इन दोनों से अलग एक ऐसा कवि भी है जो न वाल्मीकि और व्यास की तरह स्रष्टा है और न ही कालिदास आदि की तरह कलाकार। वह तो अपने समय के सच को देखता है, और उसकी भावी सम्भावनाओं को देखे हुए की कविता लिखता हैं, उसे द्रष्टा कवि कहते है। भारतीय काव्य इतिहास में अपने ढंग का यह सम्भवत: पहला और अकेला ऐसा कवि हैं, जो कवि होने और बनने की किसी भी शर्त को नहीं मानता। वह कागज लेखी पर नहीं आँखन देखी पर विश्वास करता है। वे इस बात से दुखी है कि कोई उनके अनुभूत सच को सुनना नहीं चाहता ।

ISBN : 978-93-84855-13-0

कबीर ने जिस भी सच और उसकी भयावह सम्भावनाओं का साक्षात्कार किया था, उससे भारतीय समाज को बचाने के लिए वे एक ऐसे लोक धर्म का विकास चाहते थे, जिसका आधार प्रेम हो। उनके प्रेम में सामाजिक मूल्यों के साथ ही व्यक्तिगत अनुभव भी हैं। कबीर की कविता में प्रेम की अनुभूति में जब भारतीय स्त्री के पारिवारिक परिवेश और उसमें पलने वाले मानवीय सम्बन्धों की भाषा में व्यक्त होती है, तब वह मूर्त और संवेद्य होती है।

कुंजी शब्दः-कबीर, संत साहित्य, समाज, प्रेम।

भौतिक चकाचौंध के इस आर्थिक समय में समाज में उग्र साम्प्रदायिकता की आंधी चल रही है। धर्म के नाम पर घृणा, द्वेष और उन्माद का प्रचार-प्रसार हो रहा है। जाति, भाषा और धर्म के नाम पर तरह-तरह के दुराग्रहों, कट्टरताओं और संकीर्णताओं का बोलबाला हैं। ऐसी विकट परिस्थितियों में भारतीय साहित्य की प्रासंगिकता पर प्रश्न उपस्थित होता है। हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल का संत साहित्य ऐसी सम्पति है जो निश्चय ही आज के इस समय में प्रासंगिक है। भक्तिकाल की निर्गुण व सगुण परम्परा की श्रृंखला में विशिष्ट गणनीय कबीर के विषय में श्री बच्चन सिंह का कथन है कि ''संत कवियों में कबीर के बाद के कवि वैसे ही दिखाई पडते है, जैसे चद्रोदय के बाद नक्षत्र मालिकायें।''आचार्य शुक्ल कबीर के विषय में लिखते हैं कि- ''इनका लक्ष्य एक ऐसी सामान्य भक्ति का प्रचार करना था, जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों योग दे सकें और भेदभाव का कुछ परिहार हो।''

संतो के विषय में गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि -

''समदुःख सुखः स्वस्थः समलोष्टाष्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्य निन्दातमसंस्तुतिः।।''

अर्थात जो सुख व दुःख दोनों को ही समानभाव से देखता है, जिसे अपने मान-अपमान, स्तुति एवं निदा की चिंता नहीं रहती, जो धैर्यपूर्वक काम करता है, वही संत है। पाणिनी व्याकरण में भी कहा गया है कि शम् एवं त प्रत्यय से संयुक्त होकर शान्त बनता है। इसी का अपभ्रंष संत है। स्वयं कबीर जी ने संत की व्याख्या करते हुए कहा है तों

''निरवैरी निह कामता, साई सेती नेह।
विशया सून्यारार है, संतन के अंग एह।।

अर्थात जिसका कोई शत्रु नहीं है, जो निष्काम है, प्रभु से प्रेम करता है और विषयों से असम्पृक्त रहता है, वही संत है। स्पष्ट है कि संत साहित्य देश की राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक व सामाजिक परिस्थितियों के फलस्वरूप विरचित भावनात्मक व अनुभूतिपूर्ण जन साहित्य है।

संत साहित्य को मूलत: निम्न वर्गो में बांटा जा सकता है-

१. स्वविचारों का प्रतिपादन

२. जिसमें विविध धर्मों व सम्प्रदायों की रूढियों का खण्डन किया जाये।

३. जिसमें कवि ने वाद-विवाद और खण्डन-मण्डन से परे अपनी मौलिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति भावपूर्ण शब्दों में की है।

भक्तिकाल का संत साहित्य का सर्वोत्कृष्ट रूप तीसरे वर्ग के काव्य में है। संतसाहित्य की क्षीण धारा की शुरूआत भले ही जयदेव से हुई हो किन्तु उसे व्यवस्थित, प्रांजल और प्रशस्त बनाया नामदेव ने। १४ वीं शती में प्रौढ़ चिन्तन के धनी कबीर ने अपनी प्रखर प्रतिभा, सुदृढ व्यक्तित्व और कवि सुलभ सहृदयता से संत काव्य का प्रचार उत्तर भारत में किया।

कबीर जिस समय भारतीय समाज में पैदा हुए थे, वह बहुत उथल-पुथल का समय था। उस समय संस्कृति,धर्म और विचार की विविध धारायें आपस में टकरा रही थी। एक ओर हिन्दू समाज की भेदभाव पर आधारित जाति व्यवस्था की संरचना थी, दूसरी ओर उग्रता पर आधारित इस्लाम था। उस कठिन समय में मनुष्यता खतरे में थी। कबीर का सत्य समय और समाज के मानव जीवन के अनुभव से मिला था, इसलिए उसे वे अनभैसांचा कहते है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार अनभैसाचां का अर्थ ही निर्भय सत्य होता है। इस सत्य को अनुभव कर समाज में प्रसारित करने के लिए कबीर ने समाज की व्यवस्था और मनुष्य के अस्तित्व के साथ ही विद्रोह किया।

कबीर की कविता की दो बुनियादी विशेषतायें है-अथक आलोचनात्मक चेतना और प्रश्न की प्रवृति। उनकी आलोचनात्मक चेतना मूल गामी है । वह जनता को जगाने वाली और रूढियों को चुनौती देनेवाली। यह प्रवृति जितनी प्रखर कबीर की कविता मे है, उतनी उस काल के किसी अन्य कवि की कविता में नहीं। उस समय का समाज, उसका धर्म और उसकी व्यवस्था का कोई ऐसा पक्ष नहीं है जो कबीर के प्रश्नों से बच पाया हो। वे भौतिक यथार्थ के बारे में प्रश्न करते हैं और आधिभौतिक सम्भावनाओं के बारे में भी, सामाजिक व्यवस्था से जुडे प्रश्न पूछते हैं और मानसिक अवस्था से जुडे प्रश्नों से अर्न्तविरोधों को भी उजागर करता हैं।

• कबीर कथनीयता के जिस धरातल से बात करते हैं, वे हमारे दैनिक जीवन के अंगी है। कबीर ने जिस दार्शनिक सिद्धान्तों का व्याख्यान दिया है वे सुव्यवस्थित भले ही ना हो, किन्तु अनुभव की धरती पर आधारित उनके ये दार्शनिक सिद्धान्त सार पूर्ण व सार्थक है। कबीर कहते है कि मैने जिस राम शब्द का आचार किया है, उसके लिए मुझे किसी जगह जाने की जरूरत नहीं पडी अर्थात परमतत्व की अनुमति के लिए कहीं आने जाने की आवश्यकता नहीं है अपितु

नुभव की ही महत्ता है। कबीर मूर्ति पूजा का विरोध करते हुए निराकार ब्रह्म की बात करते हैं। बीर स्पष्ट कहते है कि मेरे राम ने दशरथ के घर अवतार नहीं लिया, ... प्रेशणीय है। कबीर के राम तो अगम है, सृष्टि के कण-कण में विराजमान है। ... ना, सृष्टि के कण-कण में व्याप्त। वे कहते है कि-

" व्यापक ब्रह्म सबनि मैं एकै, को पंडित को जोगी ।

रावण-रावक वन सूंक वन वेद कोरोगी।"

हिन्दू धर्म में यह मान्यता है कि जीवन की अंतिम साँस काशी में लेने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है, किन्तु कबीर की दृढ मान्यता थी कि कर्मो के अनुसार ही गति मिलती है, स्थान विशेष के कारण नहीं। अपनी इसी मान्यता को सिद्ध करने के लिए वे अंतिम समय मगहर चले गए।

कबीर के प्रश्न उच्च वर्ग और उच्च वर्ण की मान्यताओं को चुनौती देने वाले ... की बखिया उधेडने वाले हैं वे मान्यतायें चाहे कबीर के युग की हो या वर्तमान की। कबीर के प्रश्न जितने सहज और बेलाग है, उतने ही तिलमिला देने वाले हैं वे कभी कभी सुकरात की तरह अज्ञानी बनकर प्रश्न करते है तो कभी पण्डितों और मुल्लाओं के ज्ञान को भी धराशायी करने की कोशिश करते है। उनकी प्रश्न पूछने की प्रवृत्ति व्यंग्य को विशिष्ट सामाजिक कला बनाती है। वास्तव में हिन्दी साहित्य में कबीर की कविता को प्रश्न करने वाली और तुलसी की कविता को उत्तर देने वाली कहा जाता है। कबीर केवल असहमति और विरोध के कवि नहीं है, वे समाज में मनुष्यत्व के विकास और मानवीय भावों को युगधर्म बनाने पर जोर देते हैं । कबीर चाहते हैं कि इन मानवीय गुणों का अनुगमन कर मनुष्य स्वयं देववत आचरण करें न कि अवतार वाद पर आश्रित बने। अवतार वाद मनुष्य को परावलम्बन और निरीहता प्रदान करता हैं वे गौतमबुद्ध की तरह कहते हैं कि अपना दीपक स्वयं बनो।

कबीर लोक जीवन में प्रचलित ऐसे अन्धविश्वासों का खण्डन करते हैं, जो मनुष्य के आत्मविश्वास का नाश करते है। उदात्त भक्तिभावना, मूल गामी दार्शनिक दृष्टि और प्रखर सामाजिक चेतना के प्रतिपादक कबीर सम्भवत: एकमात्र ऐसे कवि है, जिन्हें हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, और बौद्ध सभी अपना मानते है। अतएव रवीन्द्रनाथ टेगोर ने उन्हें मुक्तिदूत, और भारत पथिक कहा था और उन्हें राजाराम मोहन राय का अग्रपथिक घोषित किया था। कबीर न केवल अपने युग की नयी चेतना के जागरण के प्रेरणास्रोत ही ना थे बल्कि वे आधुनिक भारतीय नवजागरण के अग्रदूत भी हैं यह कहना गलत नहीं होगा कि आधुनिक भारतीय नवजागरण की चिन्तनधारा में जो कुछ देशज, उदार, अग्रगामी, और जनोन्मुख है, उसके निर्माण में कबीर की कविता महत्वपूर्ण हैं।

साहित्यिक संसार में तीन प्रकार के कवि माने जाते है – एक जिन्होंनें अपना पूरा संसार स्वयं रचा है उदाहरणतः– वाल्मीकि और व्यास। दूसरे प्रकार के कवि है जिन्होंनें स्रष्टा कवियों के काव्य संसार से अपनी रचना की मूल सामग्री लेकर उसे नयी कला के साथ नये रूप में रचा हैं ऐसे कवि है कालिदास, सूरदास और तुलसीदास । इन दोनों से अलग एक ऐसा कवि भी है जो न वाल्मीकि और व्यास की तरह स्रष्टा है और न ही कालिदास आदि की तरह कलाकार। वह तो अपने समय के सच को देखता है, और उसकी भावी सम्भावनाओं को और उसी देखे हुए की कविता लिखता हैं, उसे द्रष्टा कवि कहते है। भारतीय काव्य इतिहास में अपने ढंग का यह सम्भवतः पहला और अकेला ऐसा कवि हैं, जो कवि होने और बनने की किसी भी शर्त को नहीं मानता। वह कागज लेखी पर नहीं आंखन देखी पर विश्वास करता है। वे इस बात से दुखी है कि कोई उनके अनुभूत सच को सुनना नहीं चाहता। कबीर अपने समय और समाज के प्रति सजग है उनकी सजगता से ही उनकी कविता का जन्म हुआ अतएव उनकी कविता काल जीवी और कालजयी है।

कबीर ने जिस भीषण सच और उसकी भयावह सम्भावनाओं का साक्षात्कार किया था, उससे भारतीय समाज को बचाने के लिए वे एक ऐसे लोकधर्म का विकास चाहते थे, जिसका आधार प्रेम हो । क्योंकि कबीर मानते थे कि प्रेम ही सामाजिक समता और मनुष्यता का आधार है। इसलिए कबीर को प्रेम का कवि कहा जाता है उनका प्रेम लौकिक के साथ आध्यात्मिक भी है। इस प्रेम में सामाजिक मूल्यों के साथ ही व्यक्तिगत अनुभव भी हैं। कबीर की कविता में प्रेम की अनुभूति में जब भारतीय स्त्री के पारिवारिक परिवेश और उसमें पलने वाले मानवीय सम्बन्धों की भाषा में व्यक्त होती है, तब वह मूर्त और संवेद्य होती है।

भक्ति आन्दोलन की निर्गुणधारा की कविता भारत की श्रमजीवी जनता के जीवन की वास्तविकताओं और आंकांक्षाओं की कविता हैं, जिसके प्रवर्तक और प्रतिनिधि कबीर है। वे बार–बार कहते है कि–मैं जुलाहा मैं जुलाहा। उनकी कविता का ताना–बाना भी कहता है कि यह एक बुनकर की कविता है। उनका पूर्ण काव्यलोक एक जुलाहे के जीवन यथार्थ के अनुभवों से बुना हुआ है। कबीर प्रत्येक लौकिक और अलौकिक सभी को बुनकर की नजर से देखते हैं। उनके लिए ईश्वर भी एक बुनकर हैं तथा उनकी यह दुनिया और मानव का या झीनी झीनी–बी नीच दरिया है। कबीर अपने अनुभवों का ताना तानकर उससे भक्ति का बाना बुनते हैं। कबीर के जीवन जीने की कला ही उनकी कविता की कला बन गयी है।

उनकी विशिष्ट कविता शिष्टकाव्य और लोक काव्य के भेद को मिटाती है। यह वाचिक संस्कृति की देन है और लोकप्रतिभा की सृजनशीलता का विलक्षण उदाहरण है। लोक जीवन के अनुभवों से रची हुई उनकी कविता जनता के जीवन और स्मृति में बसी हुई

जनता केवल पढती और सुनती नहीं बल्कि जीती भी है। कबीर
कारण उनकी बोलचाल और जीवन व्यवहार की भाषा है।

ज्ञानोपदेश आज भी उतने ही प्रासंगिक् है, जितने उनके समय में थे।
तिकता के अवमूल्यन और राजनैतिक विश्रृंखलता के इस युग में कबीर
ना, समझना और जीवन में अपनाना राष्ट्रीय व साम्प्रदायिक एकता में
कता है। संत साहित्य की युगीन परिस्थितियों पर विचार करें तो उस समय
माजिक भेदभाव और वैमनस्यता का बोलबाला था। सामाजिक कट्टरता
जड़ों को खोखला कर राष्ट्रीय विकास में बाधक बनी थी। रूढियाँ व
ास मानवता का हनन कर रहे थे। वर्तमान युग में भी धर्म, जाति सर्वोपरि होते हुए
ो भावना प्रबल होती जा रही है। मानवता अपना अस्तित्व खोती जा रही थी तो
ा कहीं गहरे गर्त में धँसती जा रही थी। ऐसी परिस्थितियों में उनके विचार सटीक
होते है। कबीर ने धर्म के नाम पर जनता का शोषण करने वाले सिद्धान्तों का तार्किक
से खण्डन करते हुए समाज को जागृत करने का जो प्रयास किया है, वह आज भी
ति: प्रासंगिक है। उन्होंने यह संदेश देने की कोशिश की है कि जातिगत भेदभाव एवं
अस्पृश्यता के संकुचित दायरे से बाहर निकलकर नैतिकता के आँचल में रहकर ही समाज
व मानवता का विकास सम्भव है। कबीर की कविता की खूबी है कि वे शब्दों को सुनते नहीं
है, बल्कि देखते है उनकी कविता में मात्र भावों की अभिव्यक्ति नहीं अपितु संस्कृति का
विश्लेषण है। निश्चय ही संत साहित्य में कबीर के उदात्त विचारों से आज भी समाज के
जनमानस में जागृति संभव है।

सन्दर्भ ग्रन्थ:-

१. डॉ. सुषमा दुबे, डॉ. राजकुमार-प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य- वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

२. कबीर-हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन

३. कबीर के आलोचक - डॉ. धर्मवीर भारती , वाणी प्रकाशन

४. नवनीत हिन्दी पत्रिका

डॉ. नेहा कल्याणी
सहायक आचार्य
गो. से. अर्थ-वाणिज्य महाविद्यालय, नागपुर